

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 16 — कालिय-दमन

5 October 2026



सर्प कालिय के सौ फणों पर चढ़कर, उसके सिरों के मणियों से रँगें अपने चरण-कमलों सहित, कृष्ण उस असुर को नृत्य से वश में कर लेते हैं, जबकि देवगण पुष्प बरसाते और मृदंग बजाते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध का यह सोलहवाँ अध्याय कृष्ण की सबसे प्रसिद्ध लीलाओं में से एक — सर्प कालिय के दमन — का वर्णन करता है। यमुना का एक गहरा मोड़ महान् काले सर्प के विष से इतना घातक हो चुका था कि ऊपर उड़ते पक्षी तक मरकर गिर पड़ते थे। नदी को शुद्ध करने के लिए कृष्ण एक ऊँचे कदम्ब वृक्ष से विषैले कुण्ड में छलाँग लगा देते हैं; सर्प उन्हें कुण्डलियों में लपेट लेता है, और समस्त ब्रज तट पर दौड़ आकर शोक में डूब जाता है। तब प्रभु उठ खड़े होते हैं, और कालिय के सौ फणों पर वे उस सर्प को नृत्य से वश में कर लेते हैं। सर्प की पत्नियाँ अपने पति के प्राणों के लिए एक सुन्दर स्तुति अर्पित करती हैं, कालिय समर्पण कर देता है, और कृष्ण उसे क्षमा कर समुद्र में भेज देते हैं — और तत्क्षण यमुना पुनः मधुर और शुद्ध हो जाती है।

अध्याय-पारेचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, पूर्वार्ध)
- अध्याय: 16 (षोडश अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: सर्प कालिय का दमन
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: वृन्दावन में यमुना नदी का कालिय-कुण्ड
- केंद्रीय विषय: विषैला कुण्ड; कृष्ण का जल में कूदना; ब्रज का शोक; कालिय के फणों पर नृत्य; सर्प की पत्नियों की स्तुति; कालिय का समर्पण और निर्वासन; और यमुना का पुनः शुद्ध होना
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 16, श्लोक 1-67
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (संस्कृत-हिन्दी, खण्ड 2)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

पंद्रहवें अध्याय में बलराम ने तालवन में गधा-असुर धेनुक का वध किया, और कृष्ण ने यमुना के विषैले जल से गिरे गौओं और बालकों को जिला दिया — वह जल जिसे सर्प कालिय ने घातक बना दिया था। यह अध्याय बताता है कि कृष्ण ने उस सर्प को नदी से कैसे भगाया और उसे शुद्ध किया।

विषैला कुण्ड

और सुनने की लालसा से राजा परीक्षित ने पूछा कि कृष्ण ने उस गहरे जल में, जहाँ वह सर्प अनेक युगों से बसा था, उसे कैसे वश में किया; क्योंकि, उन्होंने कहा, प्रभु के उदार गोपाल-चरित्र के अमृत का पान करते हुए कौन तृप्त हो सकता है? शुकदेवजी ने उत्तर दिया। यमुना में सर्प कालिय का एक कुण्ड था, जिसका जल उसके विष की अग्नि से खौलता रहता था, जिससे ऊपर उड़ते पक्षी मरकर उसमें गिर पड़ते थे, और तट के प्राणी विष-भरी फुहार और वायु से मर जाते थे।

कृष्ण का कुण्ड में कूदना

नदी को सर्प के प्रचण्ड और तीव्र विष से इस प्रकार दूषित देखकर कृष्ण — जो दुष्टों का दमन करने के लिए ही अवतरित हुए थे — ने उसे भगाने का निश्चय किया। तट पर एक बहुत ऊँचे कदम्ब वृक्ष पर चढ़कर उन्होंने अपनी करधनी कसी, ललकार में भुजाएँ ठोकीं, और विषैले जल में छल्लाँ लगा दी।

तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन
दुष्टां नदीं च खलसंयमनावतारः ।
कृष्णः कदम्बमधिरुह्य ततोऽतितुङ्ग-
मास्फोट्य गाढरशनो न्यपतद् विषोदे ॥ ६ ॥

*taṁ caṇḍa-vega-viṣa-vīryam avekṣya tena duṣṭāṁ nadīm ca khala-saṁyamanāvatāraḥ kṛṣṇaḥ
kadambam adhiruhyata 'ti-tuṅgam āsphoṭya gāḍha-rāśano nyapatad viṣode*

अर्थ: उस प्रचण्ड वेग और तीव्र विष वाले सर्प से दूषित नदी को देखकर कृष्ण — जिनका अवतार दुष्टों के दमन के लिए है — एक बहुत ऊँचे कदम्ब वृक्ष पर चढ़े, करधनी कसी, भुजाएँ ठोकीं, और विषैले कुण्ड में कूद पड़े। (स्कन्ध 10, अध्याय 16, श्लोक 6)



सर्प द्वारा विषाक्त नदी को शुद्ध करने के लिए कृष्ण एक ऊँचे कदम्ब वृक्ष पर चढ़ते हैं, अपनी करधनी कसते हैं, भुजाएँ ठोकते हैं, और विषैले कुण्ड में छलाँग लगा देते हैं (श्लोक 4-6)।

परम पुरुष के कूदने से मथा गया सर्प-कुण्ड अपने तटों से सौ धनुष तक उमड़ पड़ा, उसकी लहरें विष से भयंकर — किन्तु असीम बलशाली प्रभु के लिए यह क्या है? कृष्ण जल में क्रीड़ा करने लगे, उनकी भुजाएँ जल को महान् हाथी की-सी ध्वनि से मथने लगीं। यह सुनकर और अपने घर पर आक्रमण देखकर कालिय सह न सका और बाहर निकल आया। उसने प्रभु को मर्मस्थलों में डँसा और अपनी कुण्डलियों में लपेट लिया। कृष्ण को सर्प की कुण्डलियों में लिपटा और निश्चल देखकर उनके प्रिय ग्वालबाल — जिन्होंने उन्हें अपना सर्वस्व, अपने परिवार, अपना सब कुछ अर्पित कर रखा था — शोक से मूर्च्छित होकर गिर पड़े, और गौएँ तथा बछड़े करुण क्रन्दन करते हुए, अपनी दृष्टि उन्हीं पर टिकाए खड़े रह गए।

व्रज का शोक

व्रज में भयंकर उत्पात प्रकट हुए, और नन्द के नेतृत्व में गोप, यह जानकर कि कृष्ण बलराम के बिना गौएँ चराने गए हैं, अनिष्ट की आशंका से यमुना की ओर दौड़े, उनके प्राण उन्हीं में बसे थे — वृद्ध, बालक, स्त्रियाँ, सब गोकुल से निकल आए, कृष्ण के दर्शन के लिए व्याकुल। बलराम, अपने छोटे भाई की शक्ति जानते हुए, मुस्कराए और उन्हें रोका नहीं। कमल, जौ, अंकुश, वज्र और ध्वज के दिव्य चिह्नों से अंकित कृष्ण के चरण-चिह्नों का अनुसरण करते हुए वे तट पर पहुँचे और उन्हें सर्प की कुण्डलियों में बँधा, और चारों ओर स्तम्भित बालकों तथा पशुओं को देखा; और वे अभिभूत हो गए।



जब कृष्ण सर्प की कुण्डलियों में बँध जाते हैं, तब समस्त व्रज व्याकुल होकर तट पर दौड़ आता है; बलराम, अपने भाई की शक्ति जानते हुए, उन्हें कुण्ड में कूदने से रोकते हैं (श्लोक 10-23)।

गोपियाँ, अपने मन को अनन्त प्रभु में प्रेम से लगाए, उनके कोमल स्मित और वचनों को स्मरण करती हुई, उनके बिना तीनों लोकों को शून्य देखने लगीं और शोक से जलने लगीं। उन्होंने कृष्ण की माता को, जो कुण्ड में कूद पड़ना चाहती थीं, रोक लिया, और सब तट पर शवों की भाँति खड़े, अपनी दृष्टि उनके मुख पर टिकाए रहे। जब नन्द आदि जल में प्रवेश करने लगे, तब कृष्ण की महिमा जानने वाले बलराम ने उन्हें रोक दिया। और प्रभु, अपने ही लोगों को अपने लिए इस प्रकार शोकमग्न देखकर तथा मर्त्य-रीति का अनुसरण करते हुए, कुछ समय कुण्डलियों में रहकर सर्प के बन्धन से उठ खड़े हुए।

कालिय पर नृत्य

जैसे ही कृष्ण ने अपना शरीर बढ़ाया, सर्प, अपनी कुण्डलियों में पीड़ित होकर, उन्हें छोड़ने को विवश हो गया और अपने फण उठाकर फुफकारने लगा, उसकी आँखें अंगारों-सी और श्वास विष-सा। कृष्ण उसके चारों ओर गरुड़ की भाँति क्रीड़ा करने लगे, और अवसर ताकता सर्प घुमाव से थक गया। तब आदि प्रभु, समस्त कलाओं के मूल, ने उसके थके, उठे कंधों को झुकाया, उसके चौड़े सौ फणों पर चढ़े, और नृत्य करने लगे, उनके चरण-कमल उसके सिरों के मणियों के स्पर्श से लाल हो उठे।

एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांस-
मानम्य तत्पृथुशिरःस्वधिरूढ आद्यः ।
तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शतिताम्र-
पादाम्बुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त ॥ २६ ॥

*evam paribhrama-hataujasam unnatāmsam ānamya tat-pṛthu-śiraḥsv adhirūḍha ādyaḥ tan-
mūrdha-ratna-nikara-sparśāti-tāmra- pādāmbujo 'khila-kalādi-gurur nanarta*

अर्थ: घुमाव से बल-रहित हुए सर्प के उठे कंधों को झुकाकर, आदि प्रभु, समस्त कलाओं के मूल, उसके चौड़े फणों पर चढ़ गए और नृत्य करने लगे, उनके चरण-कमल उसके फणों के मणि-समूह के स्पर्श से ताम्रवर्ण हो उठे। (स्कन्ध 10, अध्याय 16, श्लोक 26)

तत्क्षण गन्धर्व, सिद्ध, मुनि, चारण और देवांगनाएँ आनन्द से मृदंग और गीत, पुष्प और स्तुति लिए आ पहुँचे। सौ फणों में से जो भी न झुकता, कृष्ण उसे अपनी एड़ियों से कुचल देते; और सर्प, प्राण क्षीण होते, रक्त और विष उगलता हुआ अन्ततः राहत पाने लगा। अपने हृदय में समस्त चराचर के गुरु, आदि पुरुष नारायण का स्मरण कर कालिय ने मन ही मन उनकी शरण ली।

सर्प की पत्नियों की स्तुति

अपने पति को जगत् धारण करने वाले प्रभु के भार तले दबा और उन एड़ियों से फण टूटे देखकर कालिय की पत्नियाँ, व्याकुलता में अपने वस्त्र और आभूषण ढीले किए, समीप आईं। अपने बच्चों को आगे कर उन्होंने समस्त प्राणियों के स्वामी को प्रणाम किया, और हाथ जोड़कर अपने पापी पति की मुक्ति के लिए प्रार्थना की, शरणदाता की शरण लेते हुए। उनकी स्तुति भागवत की सबसे सुन्दर स्तुतियों में से एक है — यह स्वीकृति कि दुष्टों को प्रभु जो भी दण्ड देते हैं वह क्रूरता नहीं अपितु सुधार है, और यह माप सदा मित्र-शत्रु दोनों के प्रति समान दृष्टि रखने वाले के हाथों ही निकलता है।

नागपत्न्य ऊचुः
न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिन्-
स्तवावतारः खलनिग्रहाय ।
रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टि-
र्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ॥ ३३ ॥

*nāga-patnya ūcuḥ nyāyyo hi daṇḍaḥ kṛta-kilbiṣe 'smiṁs tavāvatāraḥ khala-nigrahāya ripoḥ
sutānām api tulya-dṛṣṭir dhatse damaṁ phalam evānuśaṁsan*

अर्थ: सर्प की पत्नियों ने कहा: हमारे इस पापी पति को यह दण्ड पूर्णतः न्यायसंगत है, क्योंकि आपका अवतार दुष्टों के दमन के लिए है; और शत्रु के पुत्रों के प्रति भी समदृष्टि रखते हुए आप यह दण्ड केवल उनके सच्चे हित की कामना से देते हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 16, श्लोक 33)



कालिय की पत्नियाँ अपने बच्चों को आगे कर हाथ जोड़कर कृष्ण से अपने पति के प्राणों की भीख माँगती हैं, और उनके दण्ड को भी कृपा के रूप में स्तुति करती हैं (श्लोक 31-53)।

उन्होंने कहा कि दुष्टों पर प्रभु का क्रोध भी उनकी कृपा ही है, जो उनके पापों को धो देता है; कि वे कल्पना भी नहीं कर सकतीं कि उनके पति ने कौन-सी तपस्या, दान या करुणा की थी जिससे उन्हें उन चरणों की धूलि का स्पर्श मिला — वही धूलि जिसे स्वयं लक्ष्मी ने दीर्घ तप से खोजा। और उन्होंने वह सत्य कहा कि जो उनके चरणों की धूलि पा लेते हैं, वे फिर और कुछ भी नहीं चाहते।

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं
न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
वाञ्छन्ति यत्पादरजःप्रपन्नाः ॥ ३७ ॥

*na nāka-prṣṭhaṁ na ca sārva-bhaumaṁ na pārameṣṭhyaṁ na rasādhipatyam na yoga-siddhīr
apunar-bhavaṁ vā vāñchanti yat-pāda-rajah-prapannāḥ*

अर्थ: जो आपके चरणों की धूलि की शरण पा लेते हैं, वे न स्वर्गलोक चाहते हैं, न पृथ्वी का साम्राज्य, न ब्रह्मा का पद, न पाताल का आधिपत्य, न योग की सिद्धियाँ, और न मोक्ष ही। (स्कन्ध 10, अध्याय 16, श्लोक 37)

कालिय का समर्पण और निर्वासन

इस प्रकार सर्प की पत्नियों द्वारा स्तुति किए जाने पर प्रभु ने कालिय को छोड़ दिया, जो एड़ियों से कुचले फणों सहित मूर्च्छित पड़ा था। धीरे-धीरे श्वास और चेतना लौटने पर वह दीन सर्प हाथ जोड़कर कृष्ण से बोला: ‘हम सर्प जन्म से ही दुष्ट हैं, चिरकालीन क्रोध से भरे, और हमारा स्वभाव त्यागना कठिन है; आपकी ही माया से मोहित होकर हम इसे स्वयं कैसे त्यागें? आप ही सबके कारण, सर्वज्ञ जगदीश्वर हैं; हमारे साथ जो उचित समझें करें, चाहे कृपा या दण्ड।’ यह सुनकर प्रभु ने, मनुष्य की भूमिका निभाते हुए, अपना आदेश दिया।

श्रीशुक उवाच

इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान् कार्यमानुषः ।

नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि मा चिरम् ।

स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यते नदी ॥ ६० ॥

śrī-śuka uvāca ity ākarṇya vacaḥ prāha bhagavān kārya-mānuṣaḥ nātra stheyam tvayā sarpa samudraṁ yāhi mā ciram sva-jñāty-apatya-dārāḍhyo go-nṛbhir bhujyate nadī

अर्थ: ये वचन सुनकर प्रभु ने, मनुष्य की भूमिका निभाते हुए, कहा: हे सर्प, तुम्हें यहाँ नहीं रहना चाहिए; अपने बन्धुओं, बच्चों और पत्नियों सहित बिना विलम्ब समुद्र को चले जाओ। यह नदी गौओं और मनुष्यों के भोग के लिए रहे। (स्कन्ध 10, अध्याय 16, श्लोक 60)

और प्रभु ने उन सबको अपनी कृपा का वचन दिया जो इस लीला का स्मरण करेंगे, यह घोषित करते हुए कि जो कालिय को दिए उनके इस आदेश को स्मरण कर प्रातः-सायं उसका कीर्तन करेगा, उसे सर्पों का भय न होगा; कि जो उनके इस लीला-स्थल में स्नान कर, उनकी पूजा कर, और देवताओं को जल अर्पित करेगा, वह समस्त पापों से मुक्त होगा; और चूँकि कालिय के सिरों पर अब उनके चरणों का चिह्न था, इसलिए जिस गरुड़ से वह कभी भागा था, वह भी अब उसे हानि न पहुँचाएगा।

य एतत् संस्मरेन्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम् ।

कीर्तयन्नुभयोः सन्ध्योर्न युष्मद् भयमाप्नुयात् ॥ ६१ ॥

ya etat saṁsmaren martyas tubhyaṁ mad-anuśāsanam kīrtayann ubhayoḥ sandhyor na yuṣmad bhayam āpnuyāt

अर्थ: जो मर्त्य मनुष्य तुम्हें दिए मेरे इस आदेश का स्मरण कर दिन की दोनों सन्धियों में उसका कीर्तन करेगा, उसे तुम सर्पों का कोई भय न होगा। (स्कन्ध 10, अध्याय 16, श्लोक 61)

यमुना पुनः मधुर

अद्भुत कर्म वाले प्रभु द्वारा मुक्त और वरदान पाकर कालिय और उसकी पत्नियों ने आनन्द से उनकी पूजा की — दिव्य वस्त्रों, अमूल्य रत्नों और आभूषणों, सुगन्धित चन्दन, और कमलों की एक बड़ी माला से। गरुड़ध्वज प्रभु को प्रसन्न कर और आज्ञा पाकर कालिय ने उनकी परिक्रमा की, प्रणाम किया, और अपने परिवार सहित समुद्र के एक द्वीप को प्रस्थान किया। और उसी क्षण, लीला के लिए मनुष्य रूप धारण करने वाले प्रभु की कृपा से, यमुना पूर्णतः विषरहित हो गई, उसका जल पुनः अमृत-सा मधुर हो गया।



क्षमा और वरदान पाकर कालिय कृष्ण की पूजा करता है और अपने परिवार सहित समुद्र को प्रस्थान करता है; और तत्क्षण यमुना विषरहित होकर उसका जल अमृत-सा मधुर हो जाता है (श्लोक 60-67)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. प्रभु विषाक्त को शुद्ध करने अवतरित होते हैं। कृष्ण विष के स्रोत को ही शुद्ध करने के लिए विषैले कुण्ड में कूद पड़ते हैं (श्लोक 6)। वे हमारी दूषितता से बचते नहीं, अपितु उसे जड़ से ठीक करने उसमें उतरते हैं।
2. जब प्रेम परखा जाए, तब विश्वास दृढ़ रहता है। जब कृष्ण पराभूत-से लगते हैं, तब बलराम, उनकी शक्ति जानते हुए, शोकमग्न जनों को रोकते हैं (श्लोक 22-23)। प्रभु पर विश्वास सबसे अन्धकारमय क्षण में भी हृदय को स्थिर रखता है।
3. प्रभु क्रूरता से नहीं, कृपा से जीतते हैं। कृष्ण कालिय को नृत्य से वश में करते हैं, और उसकी पत्नियों की प्रार्थना पर उसे प्राणदान देते हैं (श्लोक 26-54)। बुराई पर उनकी विजय संयमित, कृपामयी और सुन्दर है।
4. उनका दण्ड भी उनकी कृपा है। सर्प की पत्नियाँ प्रभु के दण्ड को शोधक कृपा के रूप में स्तुति करती हैं (श्लोक 33-34)। जो उनके हाथों हमें सुधारता है, वह कभी मात्र क्रोध नहीं, अपितु हमारे हित की कामना करता प्रेम है।
5. उनके चरणों की धूलि सर्वोच्च उपहार है। जो उसे पा लेते हैं, वे न स्वर्ग चाहते हैं, न शक्ति, न मोक्ष भी (श्लोक 37)। प्रभु का हो जाना ही हर कामना की पूर्ति है।

एक भक्तिमय चिन्तन

कालिय के फणों पर नृत्य करते कृष्ण का चित्र सदियों से भक्तों को प्रिय रहा है, और यह अध्याय दिखाता है कि क्यों। प्रभु कालिय का वध नहीं करते; वे उस पर नृत्य करते हैं, और उसकी भयभीत पत्नियों की प्रार्थना पर उसे क्षमा कर देते हैं। दण्ड भी संयमित है, शत्रु भी वरदान पाता है, और जो सर्प केवल विष देने आया था, वह प्रभु के चरणों से सदा के लिए अंकित होकर, अपने पुराने शत्रु गरुड़ से भी सुरक्षित होकर विदा किया जाता है। इसमें एक गहरा आश्वासन है। हमारे अपने जीवन के विष — हमारा क्रोध, हमारी चिरकालीन आदतें जो 'त्यागनी कठिन' हैं, जैसा

कालिय ने स्वीकार किया — प्रभु की पहुँच से बाहर नहीं; वे उनके कुण्ड में ही उतरते हैं, और जहाँ हम विनाश की आशा करते हैं वहाँ वे एक नृत्य लाते हैं, और एक ऐसा शासन जो वस्तुतः एक शुद्धि है। और सर्प की पत्नियों की प्रार्थना हमें भक्ति का सम्पूर्ण रहस्य दे जाती है: जिन्होंने उनके चरणों की धूलि छू ली, वे फिर न स्वर्ग चाहते हैं, न शक्ति, न मोक्ष भी, क्योंकि उन्हें वह एक वस्तु मिल गई जो शेष सब को अनावश्यक बना देती है। जब संकट हमें कुण्डली मार ले, तब यह अध्याय हमसे कहता है कि हम भी बलराम की भाँति विश्वास करें कि प्रभु पराभूत नहीं, अपितु हमारे विष को पहले ही मधुर जल में बदल रहे हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज प्रभु को अपना कोई एक 'विष' अर्पित करें — कोई आदत, कोई क्रोध, कोई भय जो त्यागना कठिन लगे — जैसे कालिय ने अन्ततः अपना स्वभाव समर्पित किया, यह कहते हुए, 'मेरे साथ जो उचित समझें करें।' कालिय की लीला का दिन की दोनों सन्धियों — प्रातः और सायं — स्मरण करें, जैसे प्रभु ने स्वयं उसका स्मरण करने वालों को रक्षा का वचन दिया। और स्वर्ग या शक्ति नहीं, केवल उनके चरणों की धूलि माँगें। आरम्भ में धीरे-धीरे जपें: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

दशम स्कन्ध का यह सोलहवाँ अध्याय हमें कालिय-दमन की महिमामयी लीला देता है। विषैली यमुना को शुद्ध करने के लिए कृष्ण निर्भय होकर सर्प के कुण्ड में कूदते हैं; वे स्वयं को कुण्डलियों में बँधने देते हैं, ताकि समस्त ब्रज अपना प्रेम शोक में उँडेल सके, और फिर उठकर सर्प के सौ फणों पर तब तक नृत्य करते हैं जब तक वह वश में न हो जाए। कालिय की पत्नियों की प्रार्थना पर, जो उनके दण्ड को भी कृपा के रूप में स्तुति करती हैं, प्रभु सर्प को प्राणदान देते हैं और उसे समुद्र में भेज देते हैं, उन सबको वरदान देते हुए जो इस लीला का स्मरण करेंगे — और नदी पुनः मधुर हो जाती है। इस लीला में प्रभु दिखाते हैं कि वे हमारे विष के स्रोत में ही उसे ठीक करने उतरते हैं, बुराई को क्रूरता से नहीं अपितु कृपा से जीतते हैं, और हमसे केवल यही माँगते हैं कि हम अपना हठी स्वभाव उनके हाथों में सौंप दें। हम भी सर्प पर उनके नृत्य को स्मरण कर अपने हृदयों के विष उन्हें सौंप दें और उनके चरणों की धूलि से बढ़कर कुछ न माँगें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (संस्कृत-हिन्दी, खण्ड 2), दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध), षोडश अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-16-subduing-of-kaliya-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

